अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी एवं सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका
Peer Reviewed Refereed शोध पत्रिका
ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 7.789 Volume 12-Issue 02, (April-June 2024)

साहित्य और समाजदर्शन का अंतर्संबंधः एक विश्लेषण

डॉ० कृष्णा मीणा, सहायक आचार्य,
गार्गी कॉलेज (दिल्ली विश्वविद्यालय), नई दिल्ली, भारत

सार–संक्षेप

इस शोध पत्र में साहित्य और समाजदर्शन के अंतर्संबंध का विश्लेषण किया गया है। समाजदर्शन दर्शनशास्त्र की एक महत्त्वपूर्ण शाखा है जो समाज के आधारभूत नीतियों और कानूनों का विवेचन करता है जिनका प्रभाव मानवीय संबंधों पर पड़ता है। यह मानव समाज और उसकी संस्थाओं के अंतर्संबंधों और क्रियाओं का तर्कपूर्ण विश्लेषण करता है। साहित्य, समाज के मूल्यों का प्रतिबिंब होने के नाते, समाजदर्शन के साथ मिलकर समाज की संरचनाओं और मानवीय चिंतन को उजागर करता है। इस शोध पत्र में विभिन्न विचारकों और साहित्यिक समीक्षकों के दृष्टिकोण से यह बताया गया है कि किसी भी युग के सामाजिक परिवेश को समझने के लिए उस समय के साहित्य का अध्ययन आवश्यक है।इस शोधपत्र में यह दर्शाया गया है कि किस प्रकार साहित्य समाज के बुनियादी ढांचे, मानवीय मूल्यों और आदर्शों को प्रतिबिंबित करता है और उन्हें प्रभावित भी करता है। यह अध्ययन साहित्य और समाजदर्शन के विभिन्न दृष्टिकोणों को समेकित करता है, जिससे साहित्य के माध्यम से किसी भी युग के सामाजिक परिवेश को बेहतर ढंग से समझा जा सकता है। निष्कर्ष यह है कि समाजदर्शन और साहित्य के बीच का गहरा संबंध समाज की दार्शनिक, राजनीतिक, धार्मिक और आर्थिक प्रश्नों का समावेश करता है, जो समाज की गहन समझ प्रदान करता है।

मुख्य–शब्दः समाजदर्शन, साहित्य, अंतर्संबंध।

समाजदर्शन समाज और व्यक्ति के पारस्परिक संबंधों और उसके विविध पक्षों के समझने का शास्त्र है। जिस प्रकार समाज की अन्य संस्थाओं का निर्माण समाज करता है और समाज का निर्माण संस्थाएँ करती हैं, उसी प्रकार साहित्य का निर्माण समाज करता है और समाज का निर्माण साहित्य करता है।[1] व्यक्ति की चेतना का विकास भी उसी सामाजिक जीवन और परिवेश के अनुरूप होता है। साहित्यकार भी समाज का अंग होता है, इसलिए उसका चिंतन किसी न किसी रूप में अपने युग के परिवेश का परिणाम होता है।इस शोध के माध्यम से साहित्यकारों और सामाजिक विचारकों के दृष्टिकोणों का तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है, जो साहित्य और समाज के बीच के जटिल संबंधों को समझने में मदद करता है।

समाजदर्शन सामाजिक संस्थाओं की संरचना और प्रकार्यों को समझता है और उनका दार्शनिक विश्लेषण भी करता है। समाजदर्शन सामाजिक ऐक्य और समतामूलक मानवता की आवश्यकताओं की पूर्ति करने का प्रयास करता है। समाजदर्शन सम्पूर्ण मानव अस्तित्व के अर्थ को समझने का प्रयास करता है जिसमें मानवीय मूल्य और सामाजिक आदर्श समाहित है। समाजदर्शन में वो सब कुछ शामिल है जिसका मानवीय और सामाजिक महत्ता हो।

ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 7.789 Volume 12-Issue 02, (April-June 2024)

किसी भी युग के परिवेश को समझने के लिए उस समय के साहित्य पर दृष्टि डालने की आवश्यकता है। डॉ० उदयभानु सिंह के अनुसार, ''साहित्यकार अपनी रचनाओं में केवल मानवीय अनुभवों को ही नहीं चित्रित करता, सम्पूर्ण जीवन को चित्रित करने के क्रम में वह समाज के जीवन को प्रभावित करने वाले दार्शनिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक प्रश्नों से जूझता है, उन पर विचार करता है। अनुभवों का उनसे रिश्ता जोड़ता है और एक दृष्टि से इन सबको परस्पर अनुस्यूत कर जीवन की संश्लिष्ट और समग्र पहचान उभारता है।''[2] अतः साहित्य के द्वारा किसी भी युग के परिवेश को समझा जा सकता है।

साहित्य में समाजदर्शन की प्रणाली प्रयोगात्मक नहीं हो सकती। आदर्शों की स्थापना के लिए अनुभवों, तथ्यों के अलावा भावना और कल्पना की आवश्यकता पड़ती है। सामाजिक आदर्श प्राचीन प्रयोगों एवं भूतकालीन अनुभूतियों पर आधारित होते हैं, साहित्य में इन्हीं सामाजिक आदर्शों को ढूढ़ने का प्रयास समाजदर्शन के रूप में किया जाता है।

साहित्य और समाज के संबंधों को लेकर मुख्यतः दो धाराणाएँ मुखर होती हैं– भाववादी और मार्क्सवादी। भाववादी धारणा साहित्य और समाज की बिम्ब–प्रतिबिम्ब या कार्य–कारण सम्बन्ध के रूप में व्याख्या करता है, अर्थात् किसी राष्ट्र के साहित्य के अध्ययन द्वारा उस राष्ट्र के साहित्य के अध्ययन द्वारा उस राष्ट्र के जनजीवन को समझा जा सकता है। मैनेजर पाण्डेय के अनुसार साहित्य समाजका सम्बन्ध को समझने का सबसे अच्छा माध्यम बनता है।[3]

साहित्य का कार्य–कारण संबंधवादी धारणा समाज और साहित्य को इतिहास से अलग केवल रचना को महत्व देता है। भाववादी (दर्पणवादी) धारणा की आलोचना इसलिए होती है क्योंकि यह आवश्यक नहीं कि जब भी साहित्य की परखा जाएगा या पढ़ा जाएगा, हमेशा वही समाज का रूप निकलकर सामने आएगा। मार्क्सवादी धारणा लेखक की सामाजिक स्थिति पर रचना के बजाय स्वयं उत्पादन पक्ष पर अधिक बल देता है। साहित्य केवल ऐतिहासिक और सामाजिक प्रतिबिम्बों की खोज ही नहीं करता, वरन् उनमें समाहित मूल्यों की प्रकृति को भी स्पष्ट करता है। मूल्यों की पहचान के साथ वर्तमान समस्याएँ खुलकर आने लगती हैं। रचनाकार की प्रतिभा का निर्माण समाज की उस अन्तर्वस्तु से होता है जिसे व्यक्ति व्यक्तिगत स्तर पर और सामाजिक स्तर पर महसूस करता है। रचनाकार उन युगान्तकारी घटनाओं की प्रक्रिया में व्यक्तिगत रूप से भाग लेकर उन अनुभवों की संवदेना ग्रंथि को धारण करते हुए साहित्य में उसको खोलते हैं।

मध्यकाल में मौखिक और लिखित साहित्य आम जनता के सामने या अतः जनता रचना और रचनाकार से जुड़ती थी। परन्तु आधुनिक काल में साहित्य को समाज की अपेक्षा पाठकों की अधिक जरूरत है। वर्तमान समय में पाठक ही रचना और समाज के अन्तः सम्बन्धों को निर्धारित करता है। साहित्य में समाजदर्शन की आवश्यकता वस्तुतः समाधान और समस्या को जन्म देती है। हॉबहाउस के अनुसार ''सामाजिक विकास के इतिहास की परिणति सर्वत्र समाधान में नहीं, वरन् समस्या के रूप में होती है। प्रस्तुत समाधान नई समस्या को जन्म देते हैं।''[4] समाजदर्शन के अध्ययन में नई समस्या को अनुभवों, प्रयोगों तथा कल्पना एवं भावना के द्वारा सुलझाने का प्रयास किया जाता है। [5]

ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 7.789 Volume 12-Issue 02, (April-June 2024)

समाजदर्शन के अध्ययन की अपनी समस्याएँ हैं। जैसे–दो सामाजिक मूल्यों के मध्य तुलना, मानवीय आकांक्षाओं को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में समझना। समाजदर्शन के सिद्धान्तों (जैसे–विभिन्न सामाजिक संरचनाओं का व्यक्तित्व पर आक्षेप) की समीक्षा विभिन्न विचारकों ने अपने–अपने ढ़ंग से की जिसमें मैकाइवर, मैक्स वेबर, कोहन, हेगल प्रमुख है। समाजदर्शन से भी सामान्य दर्शन–शास्त्र की तरह प्रत्यक्ष रूप से कोई भी व्यवहारिक परिणाम नहीं निकलते। सामाजिक जीवन की जटिलता की तरह उसमें निश्चित सिद्धान्त लागू नहीं किये जा सकते।

समाजदर्शन मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं की कल्पनात्मक सूझ और वैज्ञानिक यथार्थता को जाँचने का प्रयास करता है। दर्शन–शास्त्रियों और समाज–वैज्ञानिकों ने मानवीय मूल्यों के अध्ययन को एक चुनौती के रूप में स्वीकार किया। समाजदर्शन का विशेष कार्य तथ्यों की खोज करना नहीं बल्कि यह उनका विश्लेषण करने की चेष्टा करता है क्योंकि इसे अन्य विज्ञानों से तथ्य ग्रहण करने पड़ते हैं। समाजदर्शन विषय को सिद्धान्तों या पूर्व मान्यताओं के साथ प्रारम्भ करना आसान नहीं है। अनुभवात्मक अध्ययन न होने के कारण तथ्यों को एकत्र करके प्रारम्भ करना भी कठिन है। जे०एस० मेकेन्जी के अनुसार, 'समाजदर्शन का अध्ययन मानव जीवन की सामान्य विशेषताओं की विवेचना से आरम्भ हों। इसके बाद उन सामान्य विशेषताओं की जाँच की जाये जो सामाजिक संगठन को विशेष रूप से उत्पन्न करती हैं। इसके बाद ही सामाजिक संगठनां के विशेष रूपों का सुव्यस्थित ढंग से अध्ययन किया जा सकता है। यदि यह संभव हो जाता है तो विषय–वस्तु से स्वतः ही अध्ययन की विधियाँ निकल आएँगी।'[6]

समाजदर्शन की विभिन्न रूप–रेखाओं का जन्म और विकास कालान्तर में हुआ। समाजदर्शन की केन्द्रीय समस्याओं को उन्हीं रूप–रेखाओं के दायरे में समझा जा सकता है।[7] यह निर्विवाद सत्य है कि समाजदर्शन विषय ने अपनी सीमाएँ पिछली शताब्दी में ही निर्धारित की है। यह भी महत्वपूर्ण है कि समाजशास्त्र, विधि–शास्त्र तथा राजनीतिशास्त्र विषयों ने अपने कार्य में दार्शनिक आधार को प्रमुखता दी। इतना ही नहीं कुछ लेखकों ने समाजदर्शन को विशुद्ध अर्थशास्त्र के दृष्टिकोण से देखा जिससे इस विषय की सीमाएँ और अधिक संकुचित हो जाती हैं।

समाजदर्शन के अध्ययन की समस्याओं पर विचार करते हुए जे०एस० मेकेन्जी कहते हैं "किन अर्थों में और कहाँ तक मानव समाज उचित प्रकार से प्राकृतिक कहला सकता है।"[8] इस प्रश्न का उत्तर देते हुए वे कहते हैं कि अगर मानव समाज पूर्ण स्वेच्छाचारी एवं परम्परागत है तो समाजदर्शन का अध्ययन यह स्पष्ट करेगा कि बाह्य परिवर्तनशील और आकस्मिक परिस्थितियों द्वारा समाज के रूप समय–समय पर किस तरह निश्चित और निर्णीत होते रहें। जे०एस० मेकेन्जी समाजदर्शन की केन्द्रीय समस्या में मानव–समाज को रखते हुए कहते हैं कि यदि मानव समाज वास्तव में प्राकृतिक है तो समाजदर्शन विषय के तहत यह विश्लेषण करना होगा कि मानव–समाज किन अंशों में प्राकृतिक है और इसकी विशेष रूप–रेखाएं क्या हैं, जिनके द्वारा इसका आधारभूत रूप विकसित होता है।[9]

भारतीय लेखकों ने साहित्य में समाजदर्शन विषय के बजाय साहित्य के समाजशास्त्र को विश्लेषित करने का प्रयास किया है। 'साहित्य का समाजशास्त्र' रचना में बच्चन सिंह लिखते हैं– 'साहित्य के समाजशास्त्र के विश्लेषण के लिए प्रायः तीन

ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 7.789 Volume 12-Issue 02, (April-June 2024)

तरह की विधियों को अपनाया जा सकता है– कुछ घटकों की परिकल्पना, साहित्य और समाज की संरचनाओं में समानान्तरता, तथा संस्था के रूप में साहित्य का अध्ययन।[10] बच्चन सिंह ने इस रचना में आगे लिखा कि साहित्य में समाजशास्त्र का अध्ययन करते हुए 'कृति और जिस काल में वह लिखी गई, है, उस काल के सामाजिक वर्गो के बीच संबंध–सूत्र खोजना चाहिए।'[10]

डॉ० रामविलास शर्मा ने अपनी रचना 'परंपरा का मूल्याकंन' में क्लासिकल साहित्य के समाजशास्त्रीय मूल्यांकन की समस्या पर गहनता से विचार किया है। ''साहित्य में परंपरा का मूल्यांकन करते हुए सबसे पहले हम उस साहित्य का मूल्य निर्धारित करते हैं जो शोषक वर्गों के विरूद्ध श्रमिक जनता के हितों को प्रतिबिंबित करता है। इसके साथ ही हम उस साहित्य पर ध्यान देते हैं जिसकी रचना का आधार शोषित जनता का श्रम है और यह देखने का प्रयत्न करते हैं कि वह वर्तमान काल में जनता के लिए कहाँ तक उपयोगी है और उसका उपयोग किस प्रकार हो सकता है। इसके अलावा जो साहित्य सीधे संपत्तिशाली वर्गों की देखरेख में रचा गया है, उसके वर्ग हितों को प्रतिबिंबित करता है उसे भी परख कर देखना चाहिए कि वह अभ्युदयशील वर्ग का साहित्य है या निम्न समाज वर्ग का।"[11] इस प्रकार साहित्य के क्षेत्र में समाजदर्शन के अध्ययन की महत्ती आवश्यकता है।

समाजदर्शन के अभाव में साहित्य के अध्ययन की शुरूआत नहीं हो सकती। इस शोध पत्रमें कई ऐसे पहलू हैं जो आगे के अनुसंधान के लिए महत्वपूर्ण हो सकते हैं। उदाहरण के लिए, विभिन्न युगों के साहित्य और समाजदर्शन के अंतर्संबंधों का विश्लेषण और उनके प्रभावों का अध्ययन किया जा सकता है। इसके अलावा, साहित्य में सामाजिक आदर्शों और मानवीय मूल्यों की स्थापना के लिए नए दृष्टिकोणों का विकास किया जा सकता है। भविष्य में, समाजदर्शन के सिद्धांतों को साहित्यिक रचनाओं में कैसे परिलक्षित किया जा सकता है, इस पर भी विस्तृत अनुसंधान किया जा सकता है।

ISSN: 2348–2605 Impact Factor: 7.789 Volume 12-Issue 02, (April-June 2024)

संदर्भ सूचीः

1. सिंह, बच्चनः साहित्य का समाज शास्त्र, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2011, पृ० 2

2. सिंह, उदयभानुः साहित्य अध्ययन की दृष्टियाँ, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, संस्करण 1980, पृ० 18

3. पाण्डेय, मैनेजरः साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, हरियाणा साहित्य अकादमी, चंडीगढ़, संस्करण 1989, पृ० 13

4.हॉबहाउस, एचजे : सोशल एवोल्यूशन एंड पॉलिटिकल थ्योरी, कोलंबिया यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयॉर्क, संस्करण 1911, पृ०166.

5. प्रसाद, महादेवः समाज–दर्शन, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संस्करण 1968, पृ० 8–9

6. मेकेन्जी, जे०एस०ः समाज–दर्शन की रूपरेखा, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण 2009, पृ० 16

7. मेकेन्जी, जे०एस०ः समाज–दर्शन की रूपरेखा, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण 2009, पृ० 21

8. हॉब्सन, जेएः वर्क एंड वेल्थः ए ह्यूमन वैल्यूएशन, मैकमिलन कंपनी, न्यूयॉर्क, संस्करण 2014.

9. मेकेन्जी, जे०एस०ः समाज–दर्शन की रूपरेखा, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण 2009, पृ० 21

10. सिंह, बच्चनः साहित्य का समाज शास्त्र, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2011, पृ० 3

11. शर्मा, रामविलास शर्माः परंपरा का मूल्यांकन, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण 2011, पृ० 10–11